International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(5): 107-110

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(5):107-110
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-09-2019
Accepted: 30-10-2019

डॉ वन्दना रुहेला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, जे वी जैन कालेज
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ वन्दना रुहेला
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, जे वी जैन कालेज
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

जीवन की सोद्देश्यता – पुरुषार्थ सिद्धि

डॉ वन्दना रुहेला

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2019.v5.i6b.1712

सारांश
आधुनिक समय में मानव नित्य प्रति भौतिक उन्नति में उत्तरोत्तर प्रगति करता जा रहा है, किंतु जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति में उसकी अपूर्णता बनी हुई बनी हुई है। जीवन में भौतिक उत्कर्ष को प्राप्त करके भी उसके हृदय की व्याकुलता उसकी अपूर्णता को द्योतित करती है। इसका कारण यह है कि वह जीवन के शरीरपक्ष के प्रति तो सजग है किंतु, यह भौतिक शरीर जिस आत्मा से, चौतन्य से संचालित होता है उसकी ओर अर्थात् आत्मोपलब्धि की ओर उसका ध्यान नहीं है । प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति पुरुषार्थ चतुष्टय के माध्यम से ऐहिक और पारलौकिक अभ्युदय की प्राप्ति के मार्ग को प्रदर्शित करके जीवन की सोद्देश्यता को सिद्ध करती है। त्रिवर्ग को सम्यक् प्रकार से प्राप्त करके जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो जाता है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति से जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति में मानव जीवन की पूर्णता होती है । प्रस्तुत शोध पत्र पुरुषार्थ सिद्धि के माध्यम से जीवन की सोद्देश्यता पर एक विचारसरणि प्रस्तुत कर रहा है। प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध जीवन के उद्देश्य और पुरुषार्थ सिद्धि से जीवन को सार्थक करने के चिंतन को प्रस्तुत यहां प्रदर्शित किया गया है।

कूट शब्द: पुरुषार्थ, त्रिवर्ग, चतुर्वर्ग, सोद्देश्यता, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

प्रस्तावना
वर्तमान समय विभिन्न क्षेत्रों में अनेकविध उपलब्धियों का युग है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधुनिकीकरण के फलस्वरूप अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन सर्वत्र दृष्टिगत हो रहे हैं। इन उपलब्धियों के दौर में मानव के रूप में हम कितने उन्नत हो रहे हैं, किस दिशा में जा रहे हैं इस विषय पर भी दृष्टिपात करना होगा। वर्तमान युग में मानव जीवन की सोद्देश्यता निर्धारित करना अत्यंत आवश्यक है जो मनुष्य को संपूर्णता की ओर अग्रसर करे। अग्निपुराण में कहा गया है– नरत्वं दुर्लभं लोके। यह मनुष्यत्व संसार में दुर्लभ है। भागवत पुराण में कहा गया है– मानव शरीर को नष्ट कर देना सभी पुरुषार्थों की हत्या है।[1]
अर्थ्यते प्रार्थ्यते सर्वैरिति अर्थः इस व्युत्पत्ति के अनुसार अभिलषित (विषयों) फल को अर्थ कहते हैं और.. पुरुषै अर्थ्यते इति पुरुषार्थः। ...अतः मनुष्य के जो प्रधान अभिलषित विषय हैं उन्हें पुरुषार्थ कहते हैं।[2]
मानव शरीर की सार्थकता उसके पुरुषार्थ में है, मानव ही सत्कर्म से अपने जीवन को सार्थक कर सकता है। मानव जीवन के दो पक्ष हैं भौतिक शरीर जो नष्टधर्मा है और इस हन्यमान शरीर में रहने वाला चिरन्तन, सनातन, अनश्वर आत्मा।[3]
यह मनुष्य ही है जो बौद्धिक चेतना से युक्त होने के कारण भोग और अपवर्ग रूप पुरुषार्थ की सिद्धि में समर्थ है। शरीर के द्वारा विभिन्न सांसारिक भाव पदार्थों के साक्षात्कार और अनुभव रूप भोग तथा चौतन्य आत्मा की मुक्ति अर्थात् अपवर्ग में ही जीवन की सार्थकता है। अतः मानव मात्र के भोग और अपवर्ग को सिद्ध करना ही पुरुषार्थ का प्रयोजन है। और पारलौकिक अभ्युदय के लिए मनुष्य को श्रेष्ठ कर्मों में रत रहना चाहिए। आलस्य या प्रमाद में या भोगों को भोगने में पशु की भांति जीवन व्यतीत करना मनुष्य शरीर के लिए उपयुक्त नहीं है ।[4]
पुरुषार्थ चतुष्टय हैं धर्म अर्थ काम और मोक्ष । धर्म अर्थ और काम इनकी समन्वित संज्ञा त्रिवर्ग है।[5] रामायण महाभारत तथा अनेकानेक प्राचीन ग्रंथों में त्रिवर्ग की प्रभूत चर्चा प्राप्त होती है। जीवन के पक्षद्वय की भांति मार्ग भी दो हैं – प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग। "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते"[6] यह श्रुतिवाक्य स्पष्टतः ही सांसारिक ज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञान का निर्देश

करता है। इन्हें ही अपरा और परा के नाम से भी अभिहित किया गया है।[7] निश्चय ही यहां आत्मविद्या की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है किंतु शरीर पक्ष का महत्व इससे न्यून नहीं होता यतः निवृत्ति का साधन भी शरीर ही है। कविकुलगुरु कालिदास ने कुमारसम्भवम् में स्वयं भगवान शिव से कहलवाया है– शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।[8]

सांख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष के भोगापवर्ग के लिए ही महदादि की सृष्टि करती है।[9] तथा बुद्धितत्त्व से ही आत्मज्ञान द्वारा पुरुष को विवेकाख्याति होती है।[10] अज्ञान ग्रंथिभेदन के उपरान्त ही मोक्ष प्राप्ति संभव है जो जीवन का परम लक्ष्य है । यह जन्म जन्मांतर का अभेद्य अज्ञान सहज ही छूटने वाला नहीं। इसकी एकमात्र औषध तत्वज्ञान ही है।[11]

अस्तु! जब प्रवृत्ति मार्ग की चर्चा होती है तब सर्वत्र त्रिवर्ग का कथन होता है। राजाओं के लिए विशेषतः त्रिवर्ग के सम्यक् अनुपालन की चर्चा होती है। रामायण में कुम्भकर्ण रावण को यही उपदेश देता है।[12]

युद्धकाण्ड सर्ग 63श्9–10

किंतु जब हम मानव जीवन को सम्पूर्णता में देखते हैं तो यह निवृत्ति मार्ग के बिना अपूर्ण है। महाभारत में त्रिवर्ग में कौन श्रेष्ठ है की चर्चा का प्रकरण अन्ततः मोक्ष की सर्वोत्कृष्टता पर जाकर सम्पूर्ण होता है ।[13]

इस त्रिवर्ग में जब चतुर्थ मोक्ष का समन्वय होता है तब यह चतुर्वर्ग कहलाता है।[14]

इन पुरुषार्थों के द्वारा आत्मपक्ष और शरीरपक्ष दोनों का ही उद्धार मानव जीवन को सोद्देश्य एवं संपूर्ण बनाता है । अपवर्ग मानव जीवन का चरम लक्ष्य है तथा धर्म प्रत्येक पुरुषार्थ के मूल में है। अर्थ और काम धर्मसम्मत होने पर ही श्लाघनीय हैं। श्रीमद्भागवत में चतुर्वर्ग को मनुष्य की समस्त चेष्टाओं का लक्ष्य कहा गया है।[15]

तथा

''धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेछ्रेय आत्मनः ''[15]

के द्वारा पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धि से मनुष्य के कल्याण की अनुशंसा की गई है।भारतीय जीवनचर्या का मूल मंत्र इन्हीं पुरुषार्थों का संतुलन है।

धर्म – पुरुषार्थों में सर्वप्रथम धर्म की गणना की जाती है। धर्म का अर्थ काम से सम्बंध है और मोक्ष तो धर्मस्वरूप ही है।

हमारे शास्त्रों में धर्म शब्द का बहुत विस्तृत अर्थों में प्रयोग हुआ है। वेद धर्म का मूल हैं –वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।[17]

इसी प्रकार श्रुतिवचन है– समस्त जगत् का आधार धर्म है.. धर्म से ही पाप की निवृत्ति होती है–

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति ।धर्मेण पापमनुदति।

धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्मात् धर्मं परमं वदन्ति।[18]

धर्म शब्द धृ धातु (धृञ् धारणे) से बना है जिसका तात्पर्य है धारण करना, आलंबन देना, पालन करना।

धर्मः (ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा धृ मन्)।[19]

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् धर्म पर ही स्थिर है। महाभारत के कर्ण पर्व में श्रीकृष्ण कहते हैं

धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।

यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।[20]

वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद कहते हैं जिससे अभ्युदय तथा परम कल्याण निःश्रेयस की सिद्धि होती है वह धर्म है– यतोऽभ्युदयः निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[21]

स्मृतिकार महाराज मनु धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं –

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[22]

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय अर्थात् चोरी न करना शौच अर्थात् शरीर और मन की शुद्धता अर्थात् पवित्रता, इंद्रियों को वश में करना, ज्ञान, विद्या, सत्य, क्रोध का त्याग ये दस धर्म के लक्षण हैं।

धारणात् धर्मः – धारण किये जाने के कारण धर्म कहा जाता है और धारण वही किया जाता है जो धारणीय हो, कल्याणकारी हो। संस्कृत ग्रंथों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि धर्म कोई विशिष्ट पूजा पद्धति नहीं अपितु ऐसी जीवन शैली है जो मानवता की पोषक हो मनुष्य का आचरण मानवता से प्रतिकूल न हो, वह सन्मार्ग पर चले यही धर्म है। धर्म का विशद् क्षेत्र सीमित शब्दों में व्याख्यायित करना कठिन है। समस्त सम्यक् आचार, कल्याण प्रवृत्ति, करणीय – अकरणीय का विवेक इत्यादि धर्म के विस्तृत क्षेत्र के अंग हैं।

अर्थ– द्वितीय पुरुषार्थ है अर्थ–अर्थ्यते सर्वैरिति अर्थः, धन के बिना संसार में प्रवृत्ति बहुत कठिन है। सांसारिक जीवन जीने के लिए धर्मयुक्त अर्थ ग्रहणीय है। जीवन में अर्थ की आवश्यकता को केंद्र में रखकर ही अथर्ववेद में ऋषि कहता है– धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।

स नः पूर्णेन यच्छतु। [23]

धन प्राप्ति कि यह कामना कल्याण से युक्त है । हमारी संस्कृति पर आधृत जीवनशैली में पवित्रता से धनार्जन का उपदेश दिया गया है । धर्म सम्मत तथा मनुष्यों द्वारा अनुमति धन प्रशंसनीय होता है। समाज की समृद्धि सत्य साधनों पर निर्भर हो यह कामना की गई है ।[24] अनासक्त भाव और दान की भावना से धन प्रशंसनीय होता है। ईशावास्योपनिषद् में धन के त्याग पूर्ण भोग की शिक्षा दी गई है–

ईशावास्यमिदं सर्वं च यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।[25]

अर्थ के विषय में चाणक्य का मत है – अर्थार्थ प्रवर्तते लोकः। [26]

प्राणियों के सुख और समृद्धि का मूल धर्म है और धर्म का मूल अर्थ है। [27]

चाणक्य अर्थ को प्रधान पुरुषार्थ मानते हैं और अर्थ को ही धर्म तथा काम का मूल मानते हैं। [28]

अर्थ की परिधि में कौन कौन से उपकरण सम्मिलित हैं कामसूत्रकार वात्स्यायन कहते हैं–

विद्या–भूमि–हिरण्य–पशु–धनधान्य–भाण्डोपस्कर।

मित्रादीनाम् अर्जनम् अर्जितस्य च विवर्धनम् अर्थः ।।[29]

महाभारत के शान्ति पर्व में संसार को कर्मभूमि कहा गया है और यहां वार्ता अर्थात् आजीविका के साधनों की प्रशंसा होती है । कृषि, व्यापार, पशुपालन, तथा विविध शिल्प ये सब आजीविका के साधन हैं।[30]

चतुर्वर्ग में स्थित अर्थ और काम धर्म से अभिसम्बद्ध है अतः धर्मानुसार अर्जित धन ही प्रशंसनीय है। मनुस्मृतिकार कहते हैं धर्म विरुद्ध अर्थ और काम को त्याग देना चाहिए।[31]

विदुर नीति में कहा गया है कि जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नहीं होता। [32]

काम– काम्यतेऽसौ कर्मणि घञ् – काम्य इच्छा इति। [33]

मूलप्रवृत्तियों में काम सर्वोपरि है। यही काम सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है । प्रजापति के मन में सर्वप्रथम सिसृक्षा रूप काम की ही उत्पत्ति हुई थी, वह काम जो मन का प्रथम बीज है।[34]

ऋग्वेद १०श्९२श्६श्४

धर्मयय काम विवाह है जिसमें पुरुष की सम्पूर्णता हेतु नारी उसकी सहधर्मचारिणी बनती है। धर्ममय काम की सम्पूर्णता को अथर्ववेद में इस प्रकार कहा गया है– कि हे वधू मैं मुख्य प्राण हूं और तू वाक् है। मैं साम अर्थात् गायन और तू ऋचा अर्थात् गानपद है मैं आकाश हूं तू पृथिवी है, वें हम दोनोन एकत्र हों और प्रजा को उत्पन्न करें। [35]

महाभारत में कहा गया है कि ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक मन और बुद्धि की अपने विषय में प्रवृत्त होने के समय उत्पन्न होने वाली प्रीति का नाम काम है। [36]–

महाभारत महाभारत वन पर्व श्३३श्७७

बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है– जाया मे स्यात् ...एतान्वै कामः। [37] बृहदारण्यक उपनिषद् १६५६१६

समस्त सृष्टि का आधार काम है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं– हे कौन्तेय! सभी योनियों में जितनी मूर्तियां उत्पन्न होती हैं उनके लिए महत् ब्रह्मरूप मेरी त्रिगुमयी माया तो गर्भ धारण करने वाली है और मैं बीज स्थापित करने वाला पिता हूं।

[38]– श्रीमद्भगवद्गीता १४६४

वात्स्यायन काम को मानव शरीर की स्थिति का हेतु मानते हैं यह आहार की भांति ही अनिवार्य है।३६ ३६–

शरीरस्थिति हेतुत्वादाहारधर्मानो हि कामाः।

वात्स्यायन कामसूत्र १६२६३७

कामनाओं को कभी विश्राम नहीं होता । महाकवि कालिदास भी कहते हैं मनोरथानामगतिर्न विद्यते ।[40]

४०– अभिज्ञानशाकुन्तलम्

काम भी एषणा ही है इसीलिए काम का धर्मानुकूल सेवन ही श्रेयस्कर है तथा पुरुषार्थ चतुष्टय की सम्यक् सिद्धि के लिए आवश्यक है।

भगवान कृष्ण कहते हैं कि सभी प्राणियों में धर्मानुकूल जो काम है वह मैं हूँ–

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।[41]

४१– श्रीमद्भगवद्गीता ७६११

चाणक्य कहते हैं– धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि ने त्रिवर्ग के संतुलन का सुंदर निदर्शन प्रस्तुत किया है। [42]

४२– परस्पर सख्यमीयिवान् तस्य त्रिगुणं न बा बाधते

किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग

सुसंस्कृत श्लाघनीय अर्थ और काम धर्मानुकूलता को प्राप्त करके स्वतः निवृत्ति मार्ग में सहायक हो जाते हैं। महाराज रघु का आचरण ऐसा उत्तम है कि उनके अर्थ और काम भी धर्म ही हो गये हैं।[43] क्योंकि अर्थ और काम धर्मानुकूलता को प्राप्त कर जीवन की सोद्देश्यता को पूर्ण करते हैं।

४३ – रघुवंशम् प्रथम सर्ग

मोक्ष – अपवर्ग या मुक्ति ही मोक्ष है । बन्धनों से छूट जाना – मुच्यते सर्वदुःखबन्धनैर्यत्र सः मोक्षः। मुच्लृ मोचने धातु से घञ् होकर मोक्ष और क्तिन् होने से मुक्ति पद निष्पन्न होता है। यही मानव जीवन का प्रधान एवं अंतिम लक्ष्य है

यह मुक्ति ज्ञान के बिना संभव नहीं है – ऋते ज्ञानान्न मुक्ति : ज्ञान से ही आत्मावबोध होता है यही मुक्ति का मूल है । यही कैवल्य, विवेकाख्याति, मुक्ति, निर्वाण आदि नामों से जाना जाता है। इस मोक्ष का स्वरूप विभिन्न दर्शनों में अलग अलग है किंतु सभी में स्वयं की खोज की पूर्णता ही मोक्ष है।

सांख्य में प्रकृति के निवृत्तप्रसवा हो जाने के पश्चात पुरुष विवेकाख्याति प्राप्त कर लेता है तथा प्रारब्ध से प्राप्त शरीर का पात हो जाने पर ऐकान्तिक तथा आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है। [44] मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है जिस प्रकार बहती हुई नदियां अपनी नाम तथा रुप को त्यागकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार तत्त्वार्थ को जानने वाला ज्ञानी नामरूपादि विमुक्त हो उस दिव्य परमपुरुष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।[45]

आत्मावबोध के उपरान्त मानव जीवन के परमार्थ को प्राप्त कर लेता है–

अथ मर्त्य अमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते ।[46]

यह मोक्ष अथवा आत्मावबोध अनुभव का विषय है। ''यन्मनसा न मनुते मनसैवानुद्रष्टव्यं '' इन दोनों श्रुतियों के भिन्न होते हुए भी जिस विषय को प्राप्त करने में ये भिन्न नहीं है यह कैवल्य की अनुभवसिद्धता को पोषित करता है।

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नाहीं[47] इस रूप में भी जब आत्मा तद्रूपता को प्राप्त कर लेती है तो कुछ भी प्राप्य या कथ्य नहीं रह जाता।

चतुर्वर्ग में त्रिवर्ग का सुष्टु अनुपालन मोक्ष का साधन हो जाता है। महाभारत में कहा गया है– धर्मे स्थितानां कौन्तेय! सिद्धिर्भवति शाश्वती।[48]

ईश्वरार्पण से मुक्ति का मार्ग बताते हुए श्री कृष्ण कहते हैं–

सर्वधर्मपरित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। ।[49]

यह निः श्रेयस अथवा अपवर्ग से अभिहित मोक्ष सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट जीव, मानव की आत्मिक उन्नति एवं चेतना की पराकाष्ठा है। इस आत्म तत्व का साक्षात्कार करके अविद्या की ग्रंथि खुल जाती है प्राणी के समस्त संशय सर्वथा कट जाते हैं और वह पूर्ण रूप से मुक्त हो परमानंद स्वरूप को प्राप्त हो जाता है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्नदृष्टे परावरे।।[50]

इस समस्त विवेचन के उपरांत कहा जा सकता है कि पुरुषार्थों की प्राप्ति के द्वारा मानव जीवन सोद्देश्य और कल्याणकारी बन सकता है । जो मानव विद्या और अविद्या इन दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् जागतिक ज्ञान से मृत्यु को पार करके मने संसार सागर को पार करके विद्या अर्थात् आत्मविद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है। [51] इस प्रकार भारतीय संस्कृति पर आधारित यह जीवन शैली मानव के भौतिक और आध्यात्मिक पक्षों में संतुलन प्रस्तुत करती है । वर्तमान समय में जीवन मात्र अर्थ और काम पर केंद्रित होने के कारण असंतुलित हो रहा है, मानवीय मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं । पुरुषार्थ सिद्धि से सोद्देश्यवती इस जीवन पद्धति में अर्थ और काम की उपेक्षा नहीं है ।मानव की भौतिक आवश्यकताओं की परिपूर्णता को यहां समग्रता से स्थान दिया गया है। अर्थ और काम जो मनुष्य जीवन के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष हैं धर्म से संयुक्त होकर विराजते हैं । भौतिक जीवन के भोगों को धर्म से संयोजित करने का यही उद्देश्य ज्ञात होता है कि मनुष्य सर्वविध अभ्युदय को प्राप्त करने के सुमार्ग पर रहे। यदि भोगों को धर्म से पृथक् ग्रहण किया गया तो मनुष्य को वह चित्त की शांति और संतोष प्राप्त नहीं हो सकेगा जो उसकी आध्यात्मिक उन्नति का कारण है। इस जीवन पद्धति में सुख साधनों के त्याग पूर्ण भोग का उपदेश दिया गया है। त्यागभाव से भोग शनैः शनैः आसक्ति के भाव को कम करता है । हमारी जीवन शैली में जीवन के शरीर पक्ष और आत्म पक्ष में संतुलन स्थापित किया गया है जिससे मनुष्य भौतिक शरीर मात्र की आवश्यकताओं में ही उलझ कर अपनी देह के प्रमुख तत्व चौतन्य अथवा आत्मा की उन्नति को भूल न जाए । पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का यह मार्ग जीवन को सोद्देश्यता प्रदान करता है। सुख –संपन्नता और उन्नतिशीलता के साथ–साथ मनुष्य में उत्तम मानवीय गुणों का निधान करता है, और आत्मिक चेतना का मार्ग भी प्रशस्त करता है। पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि से जीवन की सोद्देश्यता निर्धारित करना निश्चय ही प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

संदर्भ

1. भागवत पुराण**ए**स्कन्ध प्रथम**ए** अध्याय १ / ८
2. पुरुषार्थ चतुष्टय प्रेम वल्लभ त्रिपाठी राजविद्या- ग्रन्थमाला वाराणसी पृष्ठ संख्या ५
3. अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। श्रीमद्भगवद्गीता**ए** अध्याय २ / २०
4. मुण्डकोपनिषद् १ / २ / १
5. स्कन्दपुराण ४ / १ / ३ / ८५
6. ईशावास्योपनिषद् / ११
7. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। मुण्डकोपनिषद् १ / १ / ५
8. कुमारसम्भवम् ५ / ३३
9. सांख्यकारिका / ५६

10. तदेव / ६४
11. भारतीय दर्शन, डॉ श्रीकान्त पांडेय, पृष्ठ संख्या ३१६
12. रामायणए युद्ध काण्ड, सर्ग ६३ / ८ /१०
13. महाभारत शान्ति पर्व ५७ / १२
14. त्रिवर्गो धर्मार्थकाम: चतुर्वर्ग: समोक्षक:। अमरकोश
15. पुंसामायिनां सम्यग् भजतां भाववर्धन:। श्रेयोदिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम्।। श्रीमद्भागवत ४ / ८ / ६०
16. तदेव ४ / ८ / ३०
17. मनुस्मृति २ / ६
18. महानारायणोपनिषद् १७ / ६
19. स्कृत हिंदी कोश पृष्ठ संख्या ४८६
20. महाभारत कर्ण पर्व ४९ / ५०
21. वैशेषिकसूत्रम् पृष्ठ संख्या १० प्रथम अध्याय प्रथम आह्निक/ प्रोफेसर पंडित राजाराम बंबई मशीन प्रेस
22. मनुस्मृति ६ / ६२
23. अथर्ववेद ७ / १७
24. ऋग्वेद १ / ३० / ५
25. शुक्ल यजुर्वेद ४०वां अध्याय (ईशावास्योपनिषद् / १)
26. चाणक्य सूत्र, सप्तम अध्याय २८
27. तदेव १ / २
28. कौटिलीय अर्थशास्त्र १ / ६ / १
29. वात्स्यायन कामसूत्र १ / २ / १०
30. कर्मभूमिरियं राजन्निह वार्ता प्रशस्यते । कृषि-वाणिज्य - गोरक्ष्यं- शिल्पानि विविधानि च।। महाभारत शान्ति पर्व १६७ / ११
31. मनुस्मृति ५ / १७६
32. अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्। न हि धर्मादपैत्यर्थ: स्वर्गलोकादिवामृतम्।। महाभारत उद्योग पर्व, विदुर नीति / ४८
33. शब्दकल्पद्रुम
34. ऋग्वेद १० / १२६ / ४
35. अमोहमस्मि सा त्वं सामाहस्म्यृक त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्। ताविह सं भवाव प्रजामा जनयाव ह।। अथर्ववेद १४ / २ / ७१
36. इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च। विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते। स काम इति मे बुद्धि: कर्मणां फलमुत्तमम्। महाभारत वन पर्व ३३ / ७७
37. बृहदारण्यकोपनिषद् १ / ५ / १६
38. सर्वयोनिषु कौन्तेय! मूर्तय: संभवन्ति या:। तासां ब्रह्म महद् योनिरहं बीजप्रद: पिता। श्रीमद्भगवद्गीता १४ / ४
39. वात्स्यायन कामसूत्र १ / २ / ३७
40. कुमारसम्भवम् ५ / ६४
41. श्रीमद्भगवद्गीता ७ / ११
42. किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग / ११
43. रघुवंशम् प्रथम सर्ग / २५
44. सांख्यकारिका / ६८
45. कठोपनिषद् २ / ३ / १४
46. तदेव २ / २ / ८
47. कबीरदास
48. महाभारत शान्ति पर्व २७३ / २४
49. श्रीमद्भगवद्गीता १८ / ६६
50. मुण्डकोपनिषद् २ / २ / ८
51. विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभय ँ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।। ईशावास्योपनिषद् मन्त्र ११